बृहत्कल्पसूत्र

आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.

बृहत्कल्पसूत्र में साधु-साध्वियों के लिए स्वीकृत उत्सर्ग एवं अपवाद नियमों का उल्लेख है। इसमें प्रवास, आहार, वस्त्र, पात्र, विहार, साधु एवं साध्वी के पारस्परिक व्यवहार एवं दोनों के विशेष आचरण सबंधी निर्देश हैं। यह बृहत्कल्पसूत्र कल्पसूत्र से भिन्न है। कल्पसूत्र जो दशाश्रुतस्कन्ध का एक भाग है जबकि बृहत्कल्पसूत्र एक स्वतन्त्र सूत्र है. आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी महाराज सा ने आज से ५२ वर्ष पूर्व बृहत्कल्पसूत्र का टीका सहित सम्पादन किया था। उसमें जो बृहत्कल्पसूत्र का संक्षिप्त परिचय दिया गया था, उसे ही यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। —**सम्पादक**

जैन शास्त्रों को प्रमुखतः चार भागों में बांटा गया है— अंग, उपांग, मूल और छेद। उनमें बृहत्कल्प का स्थान भी छेद सूत्रों में आता है। आगमों में विभिन्न जगह 'दसाकप्पववहाराणं उद्देसणकालेणं' ऐसा निर्देश आता है, जिसमें दशाश्रुत स्कंध के साथ बृहत्कल्प का भी कल्प के संकेत से उल्लेख किया गया है। ज्ञात होता है कि इसका पूर्व नाम कल्पसूत्र ही रखा गया हो, क्योंकि वृत्तिकार आचार्य मलयगिरि भी इसी नाम से परिचय देते हैं। स्थानांग और आवश्यक आदि में कल्प नाम का उल्लेख होते हुए और वृत्ति में भी कल्प नाम से परिचय होते हुए इसको बृहत्कल्प नाम से क्यों कहा जाता है, 'निगूढाशया हि आचार्याः', ऐसा होने पर भी यथासाध्य कारण का पता लगाना चाहिए। संस्कृत में एक नियम है कि 'संभवव्यभिचाराभ्यां स्याद्विशेषणमर्थवत्' विशेषण का संभव हो या उसके बिना दोष आने की संभावना हो, तभी विशेषण की नाम के साथ सार्थकता होती है। इस दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि बृहत्कल्प और दशाश्रुतस्कन्ध का पर्युषण कल्प जिसको आज कल्पसूत्र के नाम से कहते हैं, दोनों को यदि एक ही नाम से कहा जाय तो ग्रंथ का सही परिचय प्राप्त नहीं होगा। अतः आवश्यकता हुई दोनों में विशेषण देने की। कल्पसूत्र के अन्तिम भाग समाचारी में भी कुछ कल्पाकल्प का भेद दिखाने हेतु उल्लेख किया है और इसमें उसी का विस्तृत विचार है— संभव है इसी दृष्टिकोण को लेकर मध्यकाल के आचार्यों ने इसका नाम बृहत्कल्प रखा हो। सामग्री के अभाव में और समय की कमी से यहां अभी यह निर्णय नहीं कर सकते हैं कि बृहत्कल्प नाम की प्रसिद्धि कब से हुई।

कर्त्ता एवं उद्देश्य

प्राप्त सामग्री के अनुसार बृहत्कल्प सूत्र के कर्त्ता श्रुतकेवली भद्रबाहु माने गये हैं। आचार्य मलयगिरि कहते हैं कि— अथ कः सूत्रमकार्षीत्? को वा निर्युक्तिं? को वा भाष्यम? इति, उच्यते— इह पूर्वेषु यद् नवमं प्रत्याख्यानं नामकं पूर्वं तस्य यत् तृतीयमाचाराख्यं वस्तु तस्मिन् विंशतितमे प्राभृते मूलगुणेषूत्तरगुणेषु चापराधेषु दशविधमालोचनादिकं प्रायश्चित्तमुपवर्णितम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालक्रमेण च दुषमानुभावतो धृति–बलवीर्यबुद्धयाऽऽयु:प्रभृतिषु परिहीयमानेषु पूर्वाणि दुरवगाहानि जातानि, ततो 'मा भूत् प्रायश्चित्त-व्यवच्छेद–इति साधूनामनुग्रहाय चतुर्दशपूर्वधरेण भगवता भद्रबाहुस्वामिना कल्पसूत्रं व्यवहारसूत्रं चाकारि, उभयोरपि च सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्ति:। इमे अपि च कल्प-व्यवहार सूत्रे सनिर्युक्तिके अल्पग्रंथतया महार्थत्वेन च दुषमानुभावतो हीयमानमेधाऽऽयुरादिगुणानामिदानीन्तनजन्तूनामल्पशक्तीनां दुर्ग्रहे दुरवधारे जाते, तत: सुखग्रहण–धारणाय भाष्यकारो भाष्यं कृतवान् तच्च सूत्रस्पर्शिक-निर्युक्त्यनुगतमिति सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिर्भाष्यं चैको ग्रंथो जात:।

टीकाकार आचार्य मलयगिरि ने कहा है कि पूर्व का यह प्रायश्चित्त भाग नष्ट नहीं हो जाय, इसलिये भद्रबाहु ने इसकी रचना की। किन्तु कुछ गहराई से सोचने पर मालूम होगा कि छेद सूत्र की रचना का उद्देश्य विभिन्न देशकाल में होने वाले साधु-साध्वियों की परिस्थितिवश उलझी समस्या को सुलझाना और मोह, अज्ञान एवं प्रमाद आदि से लगने वाले दोषों से संयम की रक्षा करना भी है।

यह सर्वविदित बात है कि साधु भी शरीरधारी प्राणी है। काम, क्रोध लोभादि उसके साथ भी लगे हैं। यद्यपि वह इनको आश्रय नहीं देता और न उदय को टिकाने का ही यत्न करता है, फिर भी छठे से ११ वें गुणस्थान तक लाख प्रयत्न करने पर भी इनका समूल नाश नहीं होता। इन छ: दर्जों में वह अपने प्रयत्न के बल पर इनको मन्द, मन्दतर, मन्दतम बना लेता है और ग्यारहवें में पहुंचकर तो उसको 'भस्माच्छन्न' आग की तरह हतशक्ति कर देता है। किन्तु अधिकता से प्रमत्तदशा के प्रथम स्थान पर रहने वाले साधु-साध्वियों के लिये तो सदा कषाय का खतरा बना रहता है। उनके लिये निर्मोहता और वीतरागता का आदर्श वांछनीय होकर भी प्राप्त नहीं है। उनका शरीर और संघ से प्रेम संबंध टूटा नहीं है। शरीर, संगी और संयम की रक्षा के लिये आहार, वस्त्र, पात्र, स्थान आदि साधनों की समय–समय पर आवश्यकता होती है। अत: उत्सर्ग और अपवाद के कथन से मुनि-धर्म की रक्षा और शुद्धि करना इसका प्रधान उद्देश्य समझना चाहिए।

शास्त्र के अधिकारी

प्राचीन समय की एक मर्यादा है कि अयोग्य को ज्ञान नहीं देना चाहिए। यदि कोई आचार्य ज्ञान दान में योग्याऽयोग्य का विचार नहीं करे तो शास्त्र ने उसे दोषभागी माना है। आवश्यक सूत्र में इसको ''सुट्ठुदिन्नं'' नामक ज्ञान का अतिचार कहा है। स्थानांग के तीसरे स्थान में कहा है कि १. अविनीत २. रसलोलुपी और ३. कलह का उपशमन नहीं करने वाला तीव्र कषायवान, ये तीन वाचना देने योग्य नहीं हैं।

प्रश्न हो सकता है कि ज्ञान तो पापी को धर्मी बनाता है और दुर्जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को भी सज्जन करता है फिर इसके लिये ऐसा परहेज क्यों? बात यह है कि ज्ञान दो प्रकार का है— एक ग्रहण शिक्षा रूप दूसरा सेवन रूप। इनमें पदार्थ ज्ञान एवं उत्सर्गापवाद की शिक्षा वाला जो प्रथम ज्ञान है उसके लिये अधिकारी का विचार आवश्यक है। आज भी अणुविज्ञान आदि के तत्त्व गुप्त रखे जाते हैं, कारण कि उनके दुरुपयोग की आशंका रहती है। इसलिये भाष्यकार कहते हैं कि शास्त्र के रहस्यों को जो साधारण में प्रगट करता है और अपवाद पद का गलत उपयोग करता है वैसे ज्ञान—दर्शन—चारित्र की शिथिल प्रवृत्ति वाले को ज्ञान देना दोष का हेतु है। ऐसे अपात्र में शास्त्रज्ञान देने वाला चतुर्गतिक संसार में परिभ्रमण करता है। इसलिये कल्पशास्त्र का ज्ञान देने के लिये निम्न गुण देखने चाहिये —

अरहस्सधारए, पारए य, असढकरणे तुलासमं समिते।
कप्पाणु-पालणा दीवणाय, आराहण छिन्न संसारी।।6490

अर्थात् जो गम्भीर रहस्य को धारण करने वाला है, प्रारम्भ किये श्रुत को बीच में नहीं छोड़ता, छल और अहंकार से दूर तथा तुला के समान राग-द्वेष रहित समबुद्धि वाला है, जितेन्द्रिय है, उसको शास्त्रज्ञान देना चाहिए, जिससे भगवत्कथित कल्प की आराधना हो अथवा जो शास्त्र कथित विधि का पालन करे उसको देना चाहिये। ऐसा करने से जिनमार्ग की दीपना होती है।

विषयवस्तु

बृहत्कल्पसूत्र में कुल ६ उद्देशक एवं ८१ अधिकार हैं। प्रत्येक अधिकार में भिन्न-भिन्न विषयों की चर्चा है। सूत्रों की संख्या २०६ है।

प्रथम उद्देशक

प्रथम उद्देशक में २४ अधिकार हैं। पहले प्रलंबाधिकार है, जिसमें कहा गया है कि ताल एवं केला आदि प्रलंबफल साधु-साध्वियों को कैसा लेना और कैसा नहीं लेना। कच्चा हो तो साधु-साध्वियों को बिना कटा लेना नहीं कल्पता, कटा हुआ ले सकते हैं। साधुओं के लिये पक्के ताल प्रलंब का निषेध नहीं, किन्तु साध्वी उसे भी विधिपूर्वक कटे होने पर ले सकती है, अन्यथा नहीं।

दूसरा मास कल्पाधिकार है। इसमें कहा है कि वर्षाकाल के अतिरिक्त साधु१ मास और साध्वी २ मास एक गांव में रह सकते हैं। यदि गांव बाहर भीतर आदि रूप से दो भाग में हो तो द्विगुण काल तक रह सकते हैं, किन्तु उस समय जहां रहते हों उसी हिस्से से भिक्षा लेनी चाहिए। तीसरे अधिकार में साधु-साध्वियों के एक गांव में एकत्र रहने का विचार है। जो गांव एक ही द्वार वाला हो, जहाँ उसी से निकलना और प्रवेश करना हो वहां दोनों को एक साथ रहना निषिद्ध है। भिन्न मार्ग होने पर रह सकते हैं। चौथे उपाश्रय अधिकार में साध्वियों के लिये बाजार या गली के मुंह पर ठहरना निषिद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा है। साधु वहां ठहर सकते हैं। साध्वियां खुले मकान में बिना आवरण किये नहीं ठहर सकती, साधु रह सकते हैं। पंचम अधिकार में बताया है यदि मिट्टी का भांड लेना आवश्यक हो तो साध्वियां सकड़े मुंह के अरहट की घड़ी जैसा भांड ले सकती हैं, किन्तु साधु वैसा नहीं ले सकता। छठे अधिकार में साधु-साध्वियों को वस्त्र की चिलिमिलिका—मच्छरदानी रखने की अनुमति दी गई है। सप्तम अधिकार में कहा है कि पानी के किनारे साधु-साध्वियों को १७ काम नहीं करना चाहिए, जैसे खड़े रहना, बैठना, सोना, खाना, पीना, स्वाध्याय आदि। आठवें अधिकार में चित्रवाले घर में साधु-साध्वियों के लिये ठहरना निषिद्ध कहा है। क्योंकि वहां ज्ञान ध्यान में विक्षेप हो सकता है। नवम अधिकार में साध्वियों के शील-रक्षण की दृष्टि से कहा है कि उन्हें शय्यादाता की देखरेख में ही रहना चाहिए। साधुओं के लिये ऐसा नियम नहीं है। दशम अधिकार में कहा गया है कि साधु को सागारिक उपाश्रय में नहीं रहना चाहियें, किन्तु सागारिक रहित स्थान में रह सकते हैं। फिर स्पष्ट कर इसी बात को ग्यारहवें अधिकार में कहा है— साधु स्त्री वाले उपाश्रय में नहीं रहे। पुरुष वाले घर में रह सकते हैं। इस प्रकार साध्वियों के लिये पुरुष सागारिक का निषेध और स्त्री वाले स्थान की अनुमति समझनी चाहिए। बारहवें अधिकार में कहा है कि जहां स्त्री आदि का प्रतिबंध हो वहां साध्वियाँ रह सकती हैं, साधु नहीं। १३ वें अधिकार में निर्देश है कि जहां घर में होकर आना जाना पड़ता हो उस जगह साधु नहीं रह सकते, साध्वियाँ स्थानाभाव से रह सकती हैं। १४ वें अधिकार में कहा है कि साधुओं को क्रोध नहीं रखना चाहिये। कभी कलह बोलना हो जाय तो अविलम्ब क्रोध को शान्त कर लेना चाहिये। कारण कि प्रशमभाव ही संयम का सार है। १५वें अधिकार में विहार का विचार है, वर्षा काल में विहार का निषेध और शेष काल में अनुमति है। १६ वें अधिकार में साधु साध्वियों के लिये दो विरोधी राज्यों में परस्पर शंका हो, इस प्रकार जल्दी गमनागमन करने का निषेध है। १७वां अधिकार अवग्रह का है। इसमें कहा है कि भिक्षा के लिये घर में गये हुए या स्वाध्याय और बहिर्भूमि जाते समय कभी गृहस्थ वस्त्र, पात्रादि से निमन्त्रण करे तो साधु-साध्वी का कर्त्तव्य है कि वे आचार्य एवं प्रवर्तिनी की निश्राय से लावें और उनकी अनुमति पाकर ही ग्रहण करें। १८वें से २१ वें तक चार अधिकारों में रात्रि के निषिद्ध कार्यों का वर्णन किया गया है। पहले में कहा गया है कि रात या विकाल में चारों आहार ग्रहण नहीं करे, केवल दिन को देखे हुए शय्यासंस्तारक रात में काम ले सकते हैं। वैसे रात या विकाल में साधु-साध्वी वस्त्र भी नहीं ले सकते, अपना चुराया गया वस्त्र आदि रात में लाया गया हो तो वह ले सकते हैं। फिर रात में एक गांव से दूसरे गांव विहार करना भी नहीं कल्पता। २२ वें अधिकार में जीमणवार में जाने का निषेध है। २३ वें अधिकार में कहा है कि साधु-साध्वियों को शारीरिक कारण या स्वाध्याय के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए रात्रि में उपाश्रय के बाहर जाना हो तो, अनुकूलतानुसार एक--दो को साथ लेकर जाना चाहिए। २४ वें अधिकार मे विहारक्षेत्र बताया गया है। पूर्व में अंग और मगध, दक्षिण में कौशाम्बी, पश्चिम में स्थूणा और उत्तर में कुणाला देश तक आर्य्यक्षेत्र कहा गया है।

द्वितीय उद्देशक

दूसरे उद्देशक में ७ अधिकार हैं। प्रथम उपाश्रयाधिकार है, जिसमें खासतौर से १२ सूत्रों के द्वारा यह बताया गया है कि कैसे उपाश्रय में उतरना और कैसे में नहीं। पहले कहा है कि जहाँ शालि आदि के बीज बिखरे हों, वहाँ नहीं ठहरना चाहिए। जहां मद्य के घड़े रखे हों और ठंडे-गर्म जल के घड़े भरे रहते हों, वहां भी साधु-साध्वी के लिये ठहरना निषिद्ध है। जिस घर में रात भर आग जलती हो या दीपक रात भर जलता रहे, वहां भी साधु-साध्वियों को नहीं ठहरना चाहिए। उपाश्रय की सीमा में घृत, गुड़ और मोदकादि खाद्यपदार्थ बिखरे हों वहां भी नहीं ठहरना चाहिए। साध्वियों के लिये सार्वजनिक धर्मशाला--मुसाफिर खाना— में एवं खुले घर या वृक्ष के नीचे ठहरना निषिद्ध है। साधु ऐसे स्थान में ठहर सकते हैं दूसरे अधिकार में शय्यातर पिंड का विचार है। यदि किसी मकान के एक से अधिक स्वामी हों तो उनमें से एक को शय्यादाता बनाकर शेष घर की भिक्षा ले सकते हैं। शय्यातर का पिंड बाहर निकलने पर भी कब लिया जा सकता है, बताया गया है। ३—४—५ वें अधिकार में, जो भोजन शय्यातर के यहां दूसरे का आया हो, या शय्यातर के यहां से भेजा गया हो तथा उसके पूज्य माननीय पुरुष के लिये बनाया गया हो, उसको किस प्रकार ग्रहण करना, कहा गया है। छठे अधिकार में कहा है कि साधु पाँच प्रकार के वस्त्र धारण कर सकते हैं-- १. जंगमज—ऊन, रेशम आदि २. अलसी ३.सणसूत्र ४.कपास और ५. वृक्ष की छाल के वल्कल। सातवें अधिकार में पांच प्रकार के रजोहरण बताये हैं--१. ऊन का २. ऊंट की जट का ३. सण का ४—५. कुटे हुए घास और मुंज का।

तृतीय उद्देशक

तीसरे उद्देशक में १६ अधिकार हैं। प्रथम अधिकार में कहा है कि जहाँ साधु रहते हों उस स्थान पर साध्वी को और साध्वी के यहां साधु को बिना कारण जाना नहीं चाहिए। दूसरे अधिकार में सकारण चमड़ा लेने का विचार है। तीसरे अधिकार में कहा है कि साधु-साध्वियों को अखण्ड, यानी बहुमूल्य वस्त्र नहीं रखना चाहिए, आवश्यकता से टुकड़ा रख सकते हैं चतुर्थ अधिकार में कहा कि साधु कच्छा नहीं रखे, साध्वियां रख सकती हैं। पंचम अधिकार में भिक्षा के लिये गयी हुई साध्वी को वस्त्र की आवश्यकता हो तो लाने की विधि बताई गई है। षष्ठ अधिकार में सर्वप्रथम दीक्षा लेने वाले साधु-साध्वी के लिये उपकरण का विचार है। सप्तम अधिकार में कहा है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि शीतकाल के आरंभ में अर्थात् चातुर्मास के अन्त में वस्त्र ग्रहण कर सकते हैं, वर्षा के आरंभ (चातुर्मास) में नहीं। अधिकार ८—९ और १० में कहा है कि वस्त्र ग्रहण, शय्या ग्रहण और वन्दन छोटे बड़े के क्रम से ही करना चाहिये। ११ वें १२वें अधिकार में गृहस्थ के घर पर साधु-साध्वियों के लिये ठहरने और व्याख्यान का निषेध है, अपवाद भी बताया गया है। १३ वें अधिकार में पाट आदि पाडिहारिक शय्या संथारा के देने की विधि कही गई है। १४ वें अधिकार में शय्या वापिस देते समय दूसरे साधु आ जाय तो अवग्रह की विधि बतलायी गई है। १५ वें अधिकार में कहा है कि गांव के बाहर सेना का पड़ाव हो तो भिक्षा के लिये वहां जाकर रात में नहीं रहना चाहिए। १६ वें अधिकार में साधु--साध्वियों के लिये गॉव के चारों ओर ५--५ कोश का अवग्रह लेकर रहने का विधान है।

चतुर्थ उद्देशक

चतुर्थ उद्देशक में १६ अधिकार हैं। प्रथम, द्वितीय और तृतीय अधिकार में क्रमशः तीन प्रकार के अनुद्घातिक, पारांचिक और अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त के कारण कहे गये हैं। चतुर्थ अधिकार में कहा है कि तीन प्रकार के मनुष्य दीक्षा, मुंडन, शिक्षा, उपस्थापन, संभोग और संवास के अयोग्य हैं। पंचम अधिकार में अविनीत आदि तीन प्रकार के पुरुषों को वाचना के अयोग्य और विनीत आदि को वाचना योग्य कहा है। षष्ठ अधिकार में दुष्ट, मूढ आदि तीन प्रकार के मनुष्य को दुर्बोध्य और अदुष्ट आदि को सुखबोध्य कहा है। सप्तम अधिकार में कहा है कि कष्ट में ग्लानि पाते हुए साधु को साध्वी एवं साध्वी को साधु आवश्यकता समझकर सद्भाव से सकारण सहारा दे तो आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। अष्टम अधिकार में कहा है कि काल या क्षेत्र की पहर तथा कोशरूप मर्यादा का उल्लंघन कर आहार आदि का उपभोग करने से साधु.साध्वी प्रायश्चित्त के अधिकारी होते हैं। नवम अधिकार में आकस्मिक कोई अनेषणीय वस्तु आ जाय तो साधु को क्या करना चाहिये, यह बताया गया है। दशम अधिकार में कल्पस्थित और अकल्पस्थित साधु के लिये औद्देशिक आहार की विधि कही गई है। एकादशवें अधिकार में साधुगणावच्छेदक और आचार्य आदि के गणान्तर करने की विधि बतलाई है। १२वें अधिकार में कदाचित् किसी साधु का आकस्मिक निधन हो जाय और साधु परठना चाहे तो उसकी विधि बतलाई है। तेरहवें अधिकार में कहा है कि कदाचित् मोहोदय से साधु का किसी के साथ कलह हो जाय तो तत्काल उसका उपशम करना चाहिये, बिना शान्ति किये भिक्षा आदि के लिये जाना नहीं कल्पता। चौदहवें अधिकार में परिहार तप वाले के साथ कैसा व्यवहार किया जाय, यह बताया गया है। पन्द्रहवें अधिकार में कहा है कि गंगा, यमुना जैसी पांच बड़ी नदियां एक मास में २--३ बार उतरना नहीं कल्पता। कैसी दशा में उतर सकते हैं, यह भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिखाया है। १६ वें अधिकार में बताया है कि घास आदि का कच्चा घर यदि निर्जीव हो तो कितनी ऊंचाई होने पर वहां मासकल्प या वर्षाकाल रह सकते हैं।

पंचम उद्देशक

पंचमोद्देशक के प्रथम अधिकार में कहा है कि यदि कोई देव-देवी विक्रिया करके साधु-साध्वी के समक्ष विपरीत लिंगी स्त्री-पुरुष के रूप में उपस्थित हों और साधु-साध्वी उनको अच्छा समझे तो प्रायश्चित्त के अधिकारी होते हैं। दूसरे अधिकार में बताया है कि कोई साधु कलह करके दूसरे गण में जावे तो वहां कोमल वचनों से शान्त कर उसे फिर मूल गण में भेज देना चाहिये आदि। तीसरे अधिकार में प्रातःकाल या सायंकाल भोजन करते समय यदि मालूम हो जाय कि सूर्य उदय नहीं हुआ अथवा अस्त हो गया है, तो क्या करना चाहिये, बताया है। चौथे अधिकार में रात्रि या विकाल में कंठ के नीचे से गुचलका जाय तो उसकी विधि कही गई है। पंचम अधिकार में बीज या जन्तु ऊपर से पात्र में गिर जाय तो किस प्रकार करना चाहिये, बताया गया है। छठे अधिकार में भोजन में सचित्त जल की बूंद गिर जाय तब उसके उपयोग की विधि कही गई है। सप्तम अधिकार में साध्वी के व्रत रक्षा का विचार है, उसके लिये निम्न बातों का निषेध है– १. एकाकिनी होकर भिक्षा, जंगल और ग्रामानुग्राम विहार करना। २. वस्त्र रहित रहना ३. अपात्र होना ४. कायोत्सर्ग में देह का भान भूलना ५. गांव के बाहर खड़े होकर आतापना लेना ६. स्थानायत आसन से रहना ७. एक रात्रि की पडिमा कायोत्सर्ग रूप करना ८. निषद्या आसन करना ९. उकडू आसन से बैठना १०. वीरासन से बैठना, ११ दंडासन करना १२. लकडासन करना १३. उलटे मुंह सोना, १४. सीधे सोना १५. आम्रकुब्जासन करना १६. एक पार्श्व से अभिग्रह कर लेटना, ये कार्य साध्वी को नहीं करने चाहिये।

साधु की तरह साध्वी को आकुंचन पट्ट धारण करना, पीछे तकिये सहारेदार आसन पर बैठना, दोनों बाजू खुट्टीदार पट्ट पर बैठना, नालवाला तुम्बा रखना, खुली दंडी का रजोहरण धारण करना, पूंजनी में दण्डी रखना ये बातें भी साध्वियों के लिये निषिद्ध हैं। अष्टम अधिकार में मोक प्रतिमा का विचार है। नवम अधिकार में रात में रहे हुए आहार के सेवन का निषेध है। लेप भी रात में रखा हुआ गाढ कारण बिना निष्द्धि है। इसी प्रकार बासी रखे हुए घृत आदि की मालिश भी निषिद्ध है। दशवें अधिकार में परिहार तप वाले के व्यवहार की विधि कही गई है। ११ वें अधिकार में कहा है कि निस्सार आहार पाकर साध्वी निर्वाह नहीं कर सके तो दूसरी बार भी भिक्षा को जाना कल्पता है।

षष्ठ उद्देशक

प्रथम अधिकार में छः अवचन कहे हैं-- जैसे १ हँसी आदि से झूठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोलना, २. अवहेलना करना ३. खिसलाने वाले वचन ४. कठोर वचन ५. गृहस्थ जैसे अपशब्द ६. शान्त कलह को उत्तेजित करने वाले वचन। ये सब अवाच्य हैं। दूसरे अधिकार में हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, अपुरुषवचन और दास वचन रूप छः प्रायश्चित्त के स्थान कहे गये हैं। तीसरे अधिकार में चार सूत्रों से कहा गया है कि साधु साध्वी के पैर में कांटा, कील आदि लग जाय एवं आंख में रज कण या जन्तु गिर जाय और वे निकाल नहीं सकें तो आवश्यकता से साधु का साध्वी तथा साध्वी का साधु निकाल सकते हैं। किन्तु यह विशेष प्रसंग का सूत्र है।

चौथे और पांचवें अधिकार में कहा है कि १२ कारणों से साधु साध्वी की रक्षा के समय स्पर्श करते हुए आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते। जैसे (१) दुर्गादि भूमि में साध्वी का पैर फिसलता हो (२) कीचड़ आदि में फिसलती हो (३) नौका पर चढ़ती या उतरती हो (४) भय आदि से विक्षिप्त चित्त हो (५) कामादि से दीप्त चित्त हो (६) भूतप्रेतादि बाधा से बेभान हो (७) उन्मत्त हो (८) उपसर्ग से व्याकुल हो (९) क्रोध या कलह से अनुपशान्त हो (१०) प्रायश्चित्त से भयभीत हो (११) भक्त प्रत्याख्यान वाली हो (१२) अर्थजात से चिन्तित हो। इन स्थितियों में साधु, साध्वी को सहारा दे सकते हैं।

छठे अधिकार में ६ बातें संयम को निस्सार बनाने वाली कही गई हैं। अन्त में कल्प की ६ स्थितियाँ बताई गई हैं। छद्मस्थ साधक के कल्पमात्र का इसमें समावेश कर दिया गया है।

शास्त्रान्तर से तुलना

बृहत्कल्प की शास्त्रान्तर से दो प्रकार की तुलना हो सकती है, एक शब्द से और दूसरी अर्थ से। यहां आर्थिक तुलना समयाभाव से नहीं कर थोड़ी सी शाब्दिक तुलना ही की जायेगी। भगवती, व्यवहार और स्थानांग सूत्र में तुलना के स्थल मिलते हैं। जैसे स्थानांग के चतुर्थ स्थान के आदि में--तओ अणुग्घाइया पं. तं. हत्थकम्मं करेमाणे—से तओ सुसण्णप्पा पं. तं....... ...अवुग्गहिए। पर्यन्त १३ सूत्रों का तृतीय उद्देशक में पूर्ण साम्य है।

स्थानांग की विशेषता यह है कि उसके पंचम स्थान के द्वितीय उद्देशक में पांच प्रकार का अनुद्घातिक बताया है, जैसे कि– पंच अणुग्घाइया पं. तं. (१) हत्थ कम्मं करेमाणे (२) मेहुणं पडिसेवमाणे (३) राइयभोयणं भुंजमाणे (४) सागारिय पिंडं भुंजमाणे (५) रायपिंडं भुंजमाणे ।

द्वितीय उद्देशक के अंतिम दो सूत्रों का पंचम स्थान के तृतीय उद्देशक के ''कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पंच वत्थाइं धारित्तए.....'' सूत्र में पूर्ण साम्य है केवल यहां 'इमाइं' पद नहीं है।

चतुर्थ उद्देशक के ३२ वें सूत्र के साथ पंचम स्थान द्वितीय उद्देशक के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि सूत्र में प्रायः साम्य है। वहाँ 'कोसिया' के स्थान पर 'एरावई' का प्रयोग है।

अपवाद में स्थानांग की विशेषता है, वहां पाँच कारण बताये हैं। जैसे कि पंचहिं ठाणेहिं कप्पंति, त. १.भयंसि वा २.दुभिक्खंसि वा ३. पव्वहेज्जवणंकोई ४. उदयोघंसि वा एज्जमाणंसि महतावा ५.अणारिएसु ।

छठे उद्देशक के अवचनादि चार सूत्र भी स्थानांग के छठे स्थान में मिलते हैं।

दुर्ग प्रकृत के 'निग्गंथे निग्गंथिं दुग्गंसि वा विसमंसि वा' आदि सूत्रों का स्थानांग पंचम स्थान के द्वितीय उद्देशक और छठे स्थान में साम्य मिलता है।

अर्थ की तुलना के लिये आचारांग आदि अन्य शास्त्र भी तुलना स्थान हो सकते हैं।

बृहत्कल्प के टीका ग्रन्थ और संस्करण

भद्रबाहुस्वामिकृत निर्युक्ति के अतिरिक्त एक संघदासगणिकृत प्राकृत भाष्य है जो गाथाबद्ध है। आचार्य मलयगिरि ने कहा है कि– ''सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिर्भाष्यं चैको ग्रन्थो जातः।'' निर्युक्ति और भाष्य का पृथक्करण करना कठिन हो गया है। क्षेमकीर्ति के उल्लेख से चूर्णि का होना भी पाया जाता है। फिर आचार्य मलयगिरि ने इस पर संस्कृत टीका की है, जो पूर्ण उपलब्ध नहीं होती। आचार्य क्षेमकीर्ति कहते हैं कि– तदपि कुतोऽपि हेतोरिदानीं परिपूर्णं नावलोक्यत इति परिभाव्य मन्दमतिमौलिनाऽपि मया गुरूपदेशं निश्रीकृत्य श्रीमलयगिरिविरचितविवरणादूर्ध्वं विवरीतुमारभ्यते।'' इससे ज्ञात होता है कि मलयगिरिकृत टीका का जो भाग उपलब्ध नहीं है, उसी की क्षेमकीर्ति ने पूर्ति की है। पूर्वाचार्यों ने कुछ टब्बार्थ भी किये हैं। उपर्युक्त निर्युक्ति, भाष्य और टीका सहित संपूर्ण ग्रन्थ ''आत्मानन्द जैन सभा भावनगर'' से ६ भागों में प्रकाशित हुआ है। मुद्रित भाष्य के साथ लगे हुए लघु विशेषण से यह अनुमान सहज होता है कि बृहद्भाष्य भी होना चाहिए। इसके अतिक्ति डा. जीवराज छेलाभाई ने गुजराती अनुवाद सहित अहमदाबाद से भी एक संस्करण निकाला है। बाल ब्रह्मचारी शास्त्र विशारद पूज्य श्री अमोलऋषिजी महाराज द्वारा इसका हिन्दी अनुवाद भी किया गया है। जो हैदराबाद दक्षिण से प्रकाशित हुआ है। आगम मन्दिर पालीताणा और मुनि जिनविजयजी द्वारा मूल संस्करण भी निकाले गये हैं। ●

● आचार्यश्री द्वारा अज्ञात टीकाकार की टीका सहित इस सूत्र का सम्पादन किया गया, जो सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, के पूर्ववर्ती जोधपुर कार्यालय से प्रकाशित हुआ। तदनन्तर सन् 1977 में सण्डेराव से मूलानुस्पर्शी अनुवाद और विशेषार्थ के साथ 'कप्पसुत्त' का प्रकाशन हुआ। सन् 1992 में आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर से 'त्रीणि छेदसूत्राणि' ग्रन्थ में इसका प्रकाशन अनुवाद एवं विवेचन के साथ हुआ है।—**सम्पादक**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org